विज्ञान पर अविश्वास

अतुल गवंडे

कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (कैल्टेक) में 10 जून, 2016 को दिया गया अतुल गवंडे का दीक्षान्त भाषण। वे इस बात पर विचार करते हैं कि वैज्ञानिक सोच और छद्मविज्ञान क्या हैं। गवंडे इस बात पर विचार करते हैं कि दुनिया में वैज्ञानिक समुदाय के प्रति बढ़ते अविश्वास के समय एक वैज्ञानिक होने का क्या मतलब है।

यदि इस जगह ने अपने काम को अंजाम दिया है - और मुझे लगता है कि दिया है - तो आप सब अब वैज्ञानिक हैं। माफ कीजिएगा, अँग्रेज़ी और इतिहास के स्नातक, आप भी वैज्ञानिक हैं। विज्ञान कोई विषय या कैरियर नहीं है। वह तो सोचने के एक व्यवस्थित ढंग के प्रति निष्ठा है, परीक्षण और तथ्यात्मक अवलोकनों के ज़रिए ज्ञान के निर्माण और ब्रह्माण्ड की व्याख्या के

एक तरीके से जुड़ाव है। बात यह है कि यह सोचने का एक सामान्य तरीका नहीं है। यह अस्वाभाविक है और सहजबोध के विपरीत है। इसे सीखना होता है। वैज्ञानिक व्याख्या ईश्वरीय विवेक, और अनुभव एवं सहजबोध से अलग है। सहजबोध ने कभी हमें बताया था कि सूरज आसमान में गति करता है और सर्दियों में बाहर खड़े रहने पर ज़ुकाम हो जाता है। मगर एक वैज्ञानिक दिमाग ने पहचाना कि ये अन्तर्बोध मात्र परिकल्पनाएँ हैं। इनकी जाँच करने की आवश्यकता है।

विज्ञान रुझान की मेरी समझ

जब मैं अपने गृहनगर ओहायो से कॉलेज पहुँचा तो बौद्धिक रूप से सबसे अधिक परेशान करने वाली चीज़ मैंने यह खोजी थी कि दुनिया के कामकाज को लेकर मेरी कई सारी मान्यताएँ कितनी गलत थीं - बात चाहे प्राकृतिक विश्व की हो या मानव-निर्मित दुनिया की। मैंने वैकल्पिक विचारों के लिए अपने प्राध्यापकों और सहपाठियों की ओर देखा। फिर उनमें से कुछ विचार लेकर मैं घर लौटा और अपने माता-पिता को बताया कि वे जो समझते हैं (जो उन्हें प्रिय है) वह सब गलत है। मगर तब भी मैं सिर्फ यही कर रहा था कि प्रदत्त विश्वासों के एक समूह के स्थान पर (उसी तरह के) दूसरे समूह को रख रहा था। मुझे वैज्ञानिकों के विशिष्ट दिमागी ढाँचे को पहचानने में बहुत वक्त लगा। महान भौतिक शास्त्री एडविन हबल ने 1938 में कैल्टेक के दीक्षान्त समारोह के वक्त कहा था कि वैज्ञानिक में 'एक स्वस्थ शंकालुपन, निलम्बित निर्णय और अनुशासित कल्पना शक्ति' होती है - न सिर्फ अन्य लोगों के विचारों को लेकर बल्कि खुद अपने विचारों को लेकर। वैज्ञानिक का दिमाग प्रयोगधर्मी होता है, मुकदमेबाज़ (litigious) नहीं।

एक छात्र के रूप में मुझे यह बात सिर्फ सोचने के एक ढंग से ज़्यादा लगी। यह जीने (being) का एक ढंग था - एक अजीबोगरीब ढंग। आपसे उम्मीद की जाती है कि आप शंकालु होंगे और कल्पनाशील होंगे, मगर बहुत अधिक नहीं। आपको फैसले मुल्तवी रखने होंगे, मगर साथ ही उनका उपयोग करना होगा। और अन्ततः, आप उम्मीद करते हैं कि दुनिया को खुले दिमाग से देखेंगे, तथ्य एकत्रित करेंगे और उन तथ्यों के रूबरू अपनी भविष्यवाणियों और अपेक्षाओं को परखेंगे। फिर आप अपना मन बनाते हैं और अपने विचारों को दृढ़ करते हैं या खारिज कर देते हैं। मगर आप यह भी मानते हैं कि किसी भी चीज़ को कभी भी अन्तिम रूप से हल नहीं किया जा सकता, कि सारा ज्ञान मात्र सम्भावित ज्ञान है। विपरीत प्रमाण कभी भी सामने आ सकता है। हबल ने इस बात को सबसे बढ़िया ढंग से यों कहा था, "वैज्ञानिक इस दुनिया की व्याख्या

क्रमिक सन्निकटन (सक्सेसिव अप्रॉक्सिमेशन्स) से करते हैं।”

वैज्ञानिक रुझान निहायत कामयाब साबित हुआ है। इसकी बदौलत पिछली एक सदी में हमारा जीवनकाल (आयु) करीब दुगना हो गया, हमारी वैश्विक संख्या बढ़ी और ब्रह्माण्ड की प्रकृति को लेकर हमारी समझ गहरी हुई है।

सबूत के बावजूद अविश्वास

फिर भी ज़रूरी नहीं कि वैज्ञानिक ज्ञान पर विश्वास किया जाता हो। कुछ हद तक तो इसलिए क्योंकि यह अपूर्ण है। मगर जहाँ विज्ञान द्वारा प्रस्तुत ज्ञान ज़बर्दस्त होता है वहाँ भी लोग अक्सर इसका प्रतिरोध करते हैं - कभी-कभी तो इसे सीधे-सीधे नकार देते हैं। उदाहरण के लिए कई लोग मानते हैं कि बचपन में लगाए जाने वाले टीकों से ऑटिज़्म होता है जबकि इस धारणा के विरुद्ध काफी प्रमाण हैं (टीके से ऑटिज़्म नहीं होता है)। या यह कि लोगों के पास बन्दूक हो तो वे ज़्यादा सुरक्षित होते हैं (जो सही नहीं है), कि जेनेटिक रूप से परिवर्तित फसलें हानिकारक होती हैं (कुल मिलाकर वे लाभदायक रही हैं), कि जलवायु परिवर्तन नहीं हो रहा है (वास्तव में हो रहा है)।

टीकों का भय आज भी बरकरार है जबकि दशकों के अनुसन्धान ने दर्शा दिया है कि यह भय बेबुनियाद है। लगभग 20 वर्ष पहले एक सांख्यिकीय विश्लेषण से संकेत मिला था कि शायद ऑटिज़्म और थिमेरोसल के बीच कुछ सम्बन्ध है (टीकों में थिमेरोसल एक परिरक्षक के रूप में मिलाया जाता है ताकि बैक्टीरिया सन्दूषण से बचाया जा सके)। बाद में पता चला कि यह विश्लेषण त्रुटिपूर्ण था, मगर डर तो घर कर गया। वैज्ञानिकों ने इसके बाद सैकड़ों अध्ययन किए और उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं दिखा। मगर डर बना रहा। कई देशों ने परिरक्षक हटा दिया मगर ऑटिज़्म में कोई कमी नहीं आई - मगर डर बढ़ता ही गया। एक ब्रिटिश अध्ययन में दावा किया गया कि आठ बच्चों में ऑटिज़्म की शुरुआत और मीज़ल्स, मम्प्स और रुबेला का टीका लगाने के समय के बीच कुछ सम्बन्ध है। वह शोध पत्र वापिस ले लिया गया था क्योंकि निष्कर्ष धोखाधड़ी-पूर्ण थेः शोध पत्र के प्रमुख लेखक ने बच्चों के बारे में डेटा को गलत ढंग से प्रस्तुत किया था। इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए कई बार किए गए अध्ययन असफल रहे। मगर फिर भी टीकाकरण में गिरावट आई जिसकी वजह से मीज़ल्स और मम्प्स का प्रकोप हुआ। पिछले वर्ष तो इसने यू.एस., कनाडा और युरोप में हज़ारों बच्चों को बीमार किया और कई जानें गईं।

जब वैज्ञानिक दावे सहजबोध के विरुद्ध होते हैं तो लोगों में उनका प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति होती है। उन्हें मीज़ल्स और मम्प्स अब आसपास नज़र तो आते नहीं। हाँ, ऑटिज़्म पीड़ित बच्चे ज़रूर नज़र आते हैं। और वे किसी माँ को

पॉलीन बार्टोलोन

चित्र-1: कैलिफोर्निया में बच्चों को स्कूल व झूलाघरों में दाखिला पाने के लिए टीका लगवाना अनिवार्य था। लेकिन इसमें कुछ अपवाद थे जिनको 2014 में मीज़ल्स के प्रकोप के बाद कैलिफोर्निया के कानून एस.बी. 277 के तहत हटाया गया। इन अपवादों को वापिस लाने की माँग करते हुए कैलिफोर्निया की राजधानी सैक्रमैन्टो में अप्रैल 2015 में टीकाकरण के खिलाफ कुछ लोगों के प्रदर्शन की यह एक फोटो है।

यह कहते सुनते हैं, “मेरा बच्चा एकदम तन्दुरुस्त था, फिर उसे टीका लगा और वह ऑटिस्टिक हो गया।”

आप उन्हें बता सकते हैं कि सह-सम्बन्ध (यानी दो चीज़ों का साथ-साथ होने) का मतलब कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं होता। आप उन्हें यह भी बता सकते हैं कि उम्र के पहले दो सालों में बच्चों को हर दो-तीन महीने में कोई-न-कोई टीका लगता है, इसलिए इतना तो निश्चित है कि कई बच्चों में किसी-न-किसी बीमारी की शुरुआत टीका लगने के बाद होगी। आप यह कह सकते हैं कि विज्ञान ने टीका लगाने और किसी बीमारी के बीच कोई सम्बन्ध नहीं दर्शाया है। मगर एक बार कोई विचार जड़ें जमा ले और फैल जाए, तो उसे लोगों के दिमागों में से निकाल बाहर करना बहुत मुश्किल होता है - खास तौर से तब जब वे वैज्ञानिक विशेषज्ञों पर विश्वास न करते हों। और पिछले कुछ वर्षों से हम वैज्ञानिक विशेषज्ञों के प्रति विश्वास में गिरावट देख रहे हैं।

अविश्वास और रूढ़िवाद

समाज विज्ञानी गॉर्डन गौचेट ने 1947 से 2010 के यू.एस. सर्वेक्षण के डेटा का अध्ययन करके कुछ अत्यन्त चिन्ताजनक रुझान देखे थे। शिक्षा के बढ़ते

स्तर के बावजूद वैज्ञानिक समुदाय के प्रति लोगों का विश्वास घटता जा रहा है। यह बात खास तौर से रूढ़िवादियों (कंज़र्वेटिव्स) पर ज़्यादा लागू होती है, यहाँ तक कि शिक्षित रूढ़िवादियों पर भी। 1974 में कॉलेज उपाधियों से लैस रूढ़िवादियों का विज्ञान और वैज्ञानिक समुदाय पर विश्वास सबसे अधिक था। आज उनका विश्वास सबसे कम है।

आज हमारे यहाँ कई सारे खेमे हैं जिनके बारे में गौचेट का कहना है कि वे स्वयं को अपने अलग ही सांस्कृतिक दायरे के रूप में पेश करते हैं। वे 'स्वयं अपना ज्ञानधार उत्पन्न करते हैं जो अक्सर वैज्ञानिक समुदाय की सांस्कृतिक सत्ता के विरोध में होता है।' इनमें से कुछ धार्मिक समूह हैं (मसलन जैव-विकास को चुनौती देने वाले)। कुछ उद्योग समूह हैं (जैसा कि जलवायु परिवर्तन को लेकर शंकाओं में नज़र आता है)। कुछ अपेक्षाकृत वामपन्थ की ओर झुके हुए हैं (जैसे वे समूह जो चिकित्सा प्रतिष्ठान को खारिज करते हैं)। ये समूह चाहे जितने विविधतापूर्ण हों मगर एक मायने में ये एक जैसे हैं। इन सबकी कुछ पवित्र आस्थाएँ हैं जिन्हें वे सवालों से ऊपर मानते हैं।

विज्ञान का मुकाबला छद्मविज्ञान से

इन आस्थाओं का बचाव करने के लिए, इनमें से कुछ समूह विज्ञान की सत्ता को खारिज कर देते हैं। आजकल लोग तर्क करते हुए दैवी सत्ता का हवाला नहीं देते। उनकी दलील होती है कि उनके पास ज़्यादा सत्य वैज्ञानिक सत्ता है। यह दावा मामले को निहायत भ्रामक बना सकता है। आपमें यह काबिलियत होनी चाहिए कि विज्ञान के दावों और छद्मविज्ञान (pseudoscience) के दावों के बीच अन्तर पहचान पाएँ।

विज्ञान के हिमायतियों ने छद्म वैज्ञानिकों के कदमों के पाँच पहचान चिन्ह ढूँढ़ निकाले हैं। वे (छद्म वैज्ञानिक) दावा करते हैं कि वैज्ञानिक आम सहमति वास्तव में विरोधी मतों को दबाने की एक साज़िश में से उभरती है। वे (छद्म वैज्ञानिक) झूठी रिपोर्ट तैयार करते हैं, जिनमें स्थापित ज्ञान के विरुद्ध मत व्यक्त किए जाते हैं मगर उनका कोई विश्वसनीय वैज्ञानिक आधार नहीं होता। वे ऐसे डेटा और शोध पत्रों को चुन-चुनकर छाँटते हैं जिनमें प्रचलित वैज्ञानिक मत को चुनौती दी गई हो और इनका उपयोग पूरे अध्ययन-क्षेत्र को झुठलाने के लिए करते हैं। वे गलत उपमाओं और अन्य तार्किक भ्रान्तियों का इस्तेमाल करते हैं। और वे अनुसन्धान से असम्भव अपेक्षाएँ पेश करते हैं: जैसे जब वैज्ञानिक एक स्तर की निश्चितता तक पहुँचते हैं, तो छद्म वैज्ञानिक कहेंगे कि उन्हें दूसरी निश्चितता हासिल करनी चाहिए।

ऐसा नहीं है कि इनमें से कुछ नज़रिए कभी भी कोई वैध तर्क प्रस्तुत नहीं

करते। कभी-कभी कोई उपमा उपयोगी होती है या निश्चितता का उच्चतर स्तर ज़रूरी होता है। मगर जब आप देखें कि इनमें से कई या सारी-की-सारी रणनीतियाँ अपनाई गई हैं, तो समझ जाइए आपका सामना किसी वैज्ञानिक दावे से नहीं हो रहा है। छद्‌मविज्ञान विज्ञान का एक रूप है जो विषयवस्तु से विहीन है।

इसके बारे में क्या किया जाए - दुनिया की व्याख्या के ज़्यादा वैध तरीके के रूप में विज्ञान का बचाव कैसे किया जाए, इस चुनौती को स्वयं विज्ञान ने सम्बोधित किया है। वैज्ञानिकों ने तजुर्बे किए हैं। जैसे वर्ष 2011 में दो ऑस्ट्रेलियाई अनुसन्धानकर्ताओं ने कई निष्कर्षों को 'द डीबंकिंग हैण्डबुक' में संकलित किया था। परिणाम गम्भीर हैं। प्रमाण यह दर्शाते हैं कि खराब विज्ञान का खण्डन करने से कोई फायदा नहीं होता; दरअसल इसके नतीजे उल्टे ही मिलते हैं। किसी अवैज्ञानिक मान्यता का खण्डन करने वाले तथ्य बताने से वास्तव में वह मान्यता ज़्यादा जानी-पहचानी लगने लगती है और इससे विश्वास करने वाले का विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। दिमाग इसी तरह काम करता है; गलत जानकारी चिपक जाती है, कुछ हद तक इसलिए कि वह व्यक्ति की दुनिया के कामकाज सम्बन्धी मानसिक मॉडल में फिट हो जाती है। लिहाज़ा, गलत जानकारी को हटाने में असफलता हाथ लगती है क्योंकि इससे उस मानसिक मॉडल में दर्दनाक खाई उत्पन्न होने का डर रहता है।

विज्ञान की वकालत कैसे करें?

तो फिर विज्ञान में विश्वास रखने वाले क्या करें? क्या भविष्य महज़ विरोधी दावों के बीच एक अन्तहीन युद्ध है? ऐसा ज़रूरी नहीं है। निष्कर्षों से इस बात के प्रमाण भी उभरे कि आप विज्ञान में विश्वास कैसे पैदा कर सकते हैं। खराब विज्ञान का खण्डन करते रहना शायद कारगर न हो मगर अच्छे विज्ञान के सही तथ्यों पर ज़ोर देना कारगर हो सकता है। और साथ में उनकी व्याख्या का वृत्तान्त जोड़ना और भी ज़्यादा कारगर साबित हो सकता है। उदाहरण के लिए, आप इस बात पर ध्यान केन्द्रित न करें कि टीकाकरण सम्बन्धी मिथकों में क्या गलत है। इसकी बजाय, आप इस बात को उभारें कि बच्चों को टीका देना सुरक्षित रहा है। हमें कैसे पता? प्रमाणों के विशाल भण्डार के आधार पर, जिसमें यह तथ्य शामिल है कि हमने पहले वैकल्पिक प्रयोग भी आज़माए हैं। 1989 से 1991 के बीच, यू.एस. के शहरी गरीब बच्चों में टीकाकरण में कमी आई थी। और इसका परिणाम मीज़ल्स के पचपन हज़ार मामलों तथा एक सौ पच्चीस मौतों के रूप में सामने आया था।

दूसरी ज़रूरी बात है कि खराब विज्ञान की उन रणनीतियों को उजागर

किया जाए जिनका उपयोग लोगों को गुमराह करने के लिए किया जा रहा है। खराब विज्ञान के पैटर्न होते हैं और इन्हें पहचानने में लोगों की मदद करने से उन्हें स्वयं ज़्यादा वैज्ञानिक विश्वास विकसित करने के औज़ार मिलेंगे। दुनिया के बारे में वैज्ञानिक समझ का बुनियादी रूप से अर्थ यह है कि आप यह फैसला कर पाएँ कि किस जानकारी पर भरोसा किया जाए। इसका मतलब यह नहीं है कि हर सवाल पर आप स्वयं प्रमाणों का गहन अध्ययन करें। आप कर भी नहीं सकते। ज्ञान इतना विस्तृत और पेचीदा हो चुका है कि कोई भी एक व्यक्ति, चाहे वैज्ञानिक हो या कोई और, उसके कुछेक हिस्सों की ही विश्वसनीय महारत हासिल कर सकता है।

बहुत थोड़े-से कामकाजी वैज्ञानिक ही होंगे जो उस परिघटना की व्याख्या एकदम शुरू से दे सकेंगे जिसका वे अध्ययन कर रहे हैं; वे अन्य वैज्ञानिकों द्वारा दी गई जानकारी व तकनीकों के भरोसे रहते हैं। वैज्ञानिक ज्ञान और वैज्ञानिक रुझान की खूबियाँ अकेले-अकेले व्यक्तियों की बजाय समुदाय में ही भलीभाँति जीवित रहती हैं। जब हम 'वैज्ञानिक समुदाय' की बात करते हैं तो हमारा इशारा एक महत्वपूर्ण चीज़ की तरफ हैः कि अग्रणी विज्ञान एक सामाजिक उद्यम है, जिसमें बौद्धिक श्रम का अत्यन्त जटिल विभाजन होता है। अलग-अलग वैज्ञानिक (बतौर व्यक्ति) बहुत ज़िद्दी हो सकते हैं, अपने प्रिय सिद्धान्तों के प्रति आसक्त हो सकते हैं, नए प्रमाणों को खारिज करने का भाव रख सकते हैं और खुद के गलत होने की सम्भावना को नकार सकते हैं (इसीलिए मैक्स प्लांक ने टिप्पणी की थी कि विज्ञान एक बार में एक दाह संस्कार करता है)। मगर एक सामुदायिक उद्यम के रूप में विज्ञान सुन्दर आत्म-सुधारक है।

मगर यह सुन्दर ढंग से संगठित कदापि नहीं है। नज़दीक से देखने पर - अपनी गड्ड-मड्ड समकक्ष समीक्षा प्रक्रिया, बुरी तरह लिखे गए शोध पत्रों, दबे-छिपे ढंग से अपमानजनक सम्पादक के नाम पत्रों, खुले आम अपमानजनक subreddit threads (ये रेड्डिट वैबसाइट, जिस पर लोग समाचार शेयर करते हैं, पर दिए गए विषयों के विभाग हैं - सबरेड्डिट), अकादमी की बढ़-चढ़कर की गई घोषणाओं के साथ - विज्ञान सत्य तक पहुँचने का घटिया खटारा लगता है। मगर फिर भी पूरे छत्ते का दिमाग हमेशा आगे की ओर बढ़ता है। आज यह जीवन के लगभग हर क्षेत्र में ज्ञान को आगे बढ़ा रहा है - यहाँ तक कि मानविकी के क्षेत्र में भी जहाँ तंत्रिका विज्ञान और कम्पयूटरीकरण मिलकर हर चीज़ की समझ को आकार दे रहे हैं - स्वतंत्र इच्छा से लेकर समय के साथ कला और साहित्य के विकास तक।

आज आप वैज्ञानिक समुदाय के हिस्से बन रहे हैं, जो मानव इतिहास का सबसे सशक्त सामूहिक उद्यम रहा है। ऐसा करते हुए आपको एक भूमिका

विरासत में मिली है कि उसकी व्याख्या करें और विश्वास के उस क्षेत्र को एक बार फिर हासिल करें जो सिमटता गया है। मेरे क्लीनिक में और सार्वजनिक स्वास्थ्य के मेरे काम में मेरा सामना ऐसे व्यक्तियों से होता रहता है जो उस चीज़ द्वारा स्थापित एकदम बुनियादी ज्ञान के प्रति भी शंका पालते हैं जिसे पत्रकार लोग मुख्यधारा का विज्ञान कहते हैं (इसमें मान्यता यह झलकती है कि जो दूसरी चीज़ है वह भी विज्ञान जैसी ही है)। चाहे मामला कार्यिकी, पोषण, बीमारी, चिकित्सा... वगैरह के तथ्यों का ही क्यों न हो। शंका करना मेरे सबसे कम नहीं बल्कि सबसे ज़्यादा शिक्षित मरीज़ों में दिखाई देता है। शिक्षा लोगों को विज्ञान के सम्पर्क में ज़रूर लाती है मगर उसका एक विपरीत असर भी होता है जिसकी वजह से लोग ज़्यादा व्यक्तिवादी और विचारधारा-आश्रित हो जाते हैं।

तो गलतफहमी यह है कि जो शैक्षणिक अर्हताएँ आपको आज मिल रही हैं वे आपको सत्य पर कोई विशेष अधिकार प्रदान करती हैं। आपने जो हासिल किया है वह कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण हैः इस बात की समझ कि सत्य की वास्तविक तलाश कैसी दिखती है। यह एक अकेले व्यक्ति का नहीं बल्कि व्यक्तियों के एक समूह - समूह जितना बड़ा हो, उतना अच्छा - का प्रयास होता है, कौतूहल, खोजी प्रवृत्ति, खुलेपन और अनुशासित ढंग से - यानी वैज्ञानिकों की तरह - विचारों पर लगे रहना।

आप क्या सोचते हैं से भी ज़्यादा महत्व इस बात का होता है कि आप कैसे सोचते हैं। इस बात को समझना आज पहले से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि हम सिर्फ इस बात को लेकर संघर्ष नहीं कर रहे हैं कि वैज्ञानिक होने का अर्थ क्या है। संघर्ष तो इस बात का है कि नागरिक होने का क्या अर्थ है।

अतुल गवंडेः सर्जन, सार्वजनिक स्वास्थ्य के शोधकर्ता और लेखक हैं। अमेरिका के बॉस्टन शहर में ब्रिघम एण्ड विमेन्स हॉस्पिटल में सामान्य और अन्तःस्त्रावी सर्जरी का काम करते हैं। हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हैल्थ और हार्वर्ड मेडिकल स्कूल में प्रोफेसर भी हैं। वे एक गैर-सरकारी, लाभ-निरपेक्ष संस्था के ज़रिए दुनियाभर में ऐसे सिस्टम और तकनीकों को क्रियान्वित करने की कोशिश में लगे हैं जिनसे सर्जरी के कारण घटित मौतों को कम किया जा सके। 1998 में *न्यू यॉर्कर* पत्रिका के स्टाफ लेखक बने थे। स्वास्थ्य और चिकित्सा पर लिखते हैं, तीन किताबों के लेखक भी हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख 10 जून, 2016 की *न्यू यॉर्कर* पत्रिका से साभार।